Impact Factor (SJIF): 6.126 E-ISSN: 2583-1615, P-ISSN: 3049-3498

International Journal of Research in Academic World

Received: 11/May/2025 **IJRAW:** 2025; 4(6):208-211 **Accepted:** 21/June/2025

श्रीकांत वर्मा के काव्य यात्रा

[*1]अमित कुमार जायसवाल और [2]डॉ. ओमप्रकाश दास

[*1]शोधार्थी, हिन्दी विभाग, आईसेक्ट वि.वि. हजारीबाग, झारखंड, भारत।

[2]शोध निर्देशक, सहा–प्राध्यापक, आईसेक्ट वि.वि. हजारीबाग, झारखंड, भारत।

सारांश

श्रीकांत वर्मा ने अपने पहले काव्य–संग्रह की भूमिका में ही कहा कि श्हर युग का प्रगतिशील साहित्य एक नए एवं जीवंत व्यक्तित्व को स्थापित करता है। प्रश्न यही है कि आज की जीवंत कविता में कौन–सा व्यक्तित्व उभर रहा है? आज के जीवंत मूल्य कौन–से हैं? ये मूल्य क्या अकेले एक व्यक्ति के हैं या संपूर्ण समाज के ? ''तारसप्तक'' का प्रकाशन हो चुका था जिसमें अज्ञेय ने कवि को ''राहों का अन्वेषी'' कहा था। श्रीकांत वर्मा ने कहा कि सिर्फ राहों का अन्वेषी कह देने से काम नहीं चलता। वे राहें कौन–सी हैं? उनका अन्वेषण कैसे किया जा रहा है? क्या इस खोज के लिए कोई रोशनी जलाई गई है? ''राहों का अन्वेषण करने के लिए–भी किसी मशाल की ज़रूरत होती है। अंधकार के खंडहरों में भटककर ''चिमगादड़'' के पंखों की फड़फड़ाहट को ही जीवन का एकमात्र चिह्न मान लेना एक और बात है, पथ की खोज करना एक दूसरी बात।'' देखना कठिन नहीं कि अपनी ही कुंठाओं में घुलते रहने की जगह वे सामाजिक मुक्ति के प्रयासों में शामिल होने को रचनाकार के दायित्व के रूप में चिह्नित करते हैं– पल की खोज का अर्थ आत्मा की मुक्ति नहीं, एक सामाजिक इकाई के रूप में मनुष्य की मुक्ति के मार्ग की खोज से है। इसलिए रचनाकार को ठोस, वास्तविक सामाजिक शक्तियों के साथ एक संबंध भी बनाना पड़ता है।

मुख्य शब्दः प्रगतिशील, साहित्य, दायित्व, सामाजिक शक्तियों, अन्वेषी।

1. प्रस्तावना

श्रीकांत वर्मा उस दौर के कवि हैं जब एक ओर नयी कविता अपना रूपाकार ग्रहण करने में मुब्तिला है, दूसरी ओर नयी उम्मीदों से भरा स्वतंत्रता का माहौल है। इसी माहौल में श्रीकांत वर्मा की जीवन–दृष्टि और साहित्य – दृष्टि विकसित होती है। मुक्तिबोध की तरह वे घोषित मार्क्सवादी तो कभी नहीं रहे, किंतु जागरूक होकर नयी कविता की एकलवादी प्रवृत्तियों का जहाँ उन्होंने विरोध किया, कविता को श्वादोंश में बाँधना भी उन्होंने स्वीकार नहीं किया। साहित्य में तटस्थता के भी वे विरोधी रहे। कविता सीधे–सीधे जनमुखी होकर जन की आकांक्षाओं का आधार स्तम्भ बने यह इच्छा उनकी कविताओं में मिलती है!

श्रीकांत वर्मा की कविता राजनीति की भीतरी दुनिया, राजनीति और समाज में व्याप्त रुग्णवादी प्रवृत्तियों को तीखे स्वर में अभिव्यक्त करती है। इतिहास पुरुषों, स्थलों के माध्यम से भी वे आधुनिक जीवन के तीव्र द्वंद्वों को निशाना बनाते हैं। नयी कविता की शालीनता भरी भाषा को भी उन्होंने बदला। एक नए ढंग के शिल्प में भाषा को जनमुखी बनाते हुए, उसकी अभिव्यक्ति क्षमता में उन्होंने कमी नहीं आने दी। श्रीकांत वर्मा की कविता के इन सभी पक्षों पर आइए विस्तार से विचार करें।

2. श्रीकांत वर्मा की जीवन–दृष्टि और साहित्य–दृष्टिः

श्रीकांत वर्मा का रचनाकार जीवन हिंदी के कई अन्य प्रतिभाशाली कवियों की तरह बड़े शहरों की चकाचौंध से दूर पहले मध्य–प्रदेश के छोटे से कस्बे बिलासपुर (अब छत्तीसगढ़ राज्य) से शुरू हुआ था। वे निम्नवर्गीय परिवेश में पले–बढ़े, बिलासपुर में ही उनकी शिक्षा–दीक्षा हुई और वहीं उन्होंने कविता लिखना भी शुरू किया। मध्यप्रदेश

***Corresponding Author:** अमित कुमार जायसवाल

कविता और साहित्य में आधुनिक संवेदना के प्रवेश के लिहाज से काफी महत्वपूर्ण है क्योंकि यहीं मुक्तिबोध लिख रहे थे और हरिशंकर परसाई भी। राजनीतिक दृष्टि से भी यह काफी सजगता और सक्रियता से भरा हुआ दौर था। स्वाधीनता संग्राम की आँच अभी तक महसूस होती थी और उसके भीतर विकसित हुई समाजवादी राजनीति का आकर्षण रचनाकारों के लिए दुर्निवार था। उस दौर के प्रायः हर रचनाकार ने इस राजनीति और इसके दार्शनिक आधार मार्क्सवाद से किसी न किसी तरह अपना संबध ज़रूर जोड़ा। यह ज़रूरी नहीं कि स्वीकार का संबंध ही हो, लेकिन उससे उदासीन या निरपेक्ष कोई न रह सका। प्रगतिवादी आंदोलन का प्रभाव भी ताज़ा था। साहित्यिक मान्यताओं के तीव्र वाद–विवाद के स्वर वातावरण में गूँजते सुनाई दे जाते थे। इस दौर में जिसने भी साहित्य के क्षेत्र में कदम रखा, उसे अपने रचनाकार–कर्म को लेकर एक गहरी जिम्मेदारी का बोध था, वह लगभग जीवन–मरण का प्रश्न ही था। हर रचनाकार ने, एकाध अपवाद को छोड़कर, अपना पक्ष स्पष्ट रूप से सामने रखा और उसे लेकर संघर्ष को भी तैयार रहा। जिम्मेदारी के इस अहसास को श्रीकांत वर्मा द्वारा डॉ. नामवर सिंह को लिखे इस पत्र में देखा जा सकता है.... मुझे अक्सर ऐसा लगता है कि इतिहास का दायित्व हम पर आज जितना है उतना पहले कभी नहीं था। हमारी कलम इस पीड़ा और यंत्रणा का वहन न कर सके किंतु मैं अपने माता–पिता का दुख–भरा चेहरा कैसे भूल सकता हूँ; अपने मित्रों और परिचितों की उन दर्द–भरी आँखों से कैसे छुटकारा पा सकता हूँ जो अवकाश के क्षणों में निरंतर मेरा पीछा करती हैं।''यह वाक्य श्रीकांत वर्मा की रचनाकार–दृष्टि को समझने के लिहाज से बड़ा महत्वपूर्ण है। इतिहास के गुरुतर दायित्व के अहसास के साथ नितांत व्यक्तिगत संवेदनाएँ जुड़ी हुई हैं; इस तरह इतिहास भी कोई व्यक्तिगत जीवन के बाहर घटने वाला घटना–क्रम नहीं है वह एक वैयक्तिक भावना या संवेदना में बदल जाता है। इसलिए इसी पत्र में वे आगे लिखते हैं 'जब कभी ऐसी रचना पढ़ता हूँ जिससे मानव–भावना और मानव–संघर्ष के गौरव को अभिव्यक्ति मिली है तो सहसा ही ऐसा लगता है– यही है जिसे वाणी देने के लिए मेरी कलम छटपटा रही है और मेरे ही एक अंश को अभिव्यक्ति मिली है। ''श्रीकांत वर्मा'' स्वयं मानव–यातना और मानव–संघर्ष के गौरव की कविताएँ लिखना चाहते थे। वे स्वयं, जैसा कई जगह उन्होंने कहा और लिखा है, रचनाकार की छटपटाहट के चलते बिलासपुर जैसे शांत इलाके से दिल्ली जैसी आपाधापी से भरी और आधुनिक पूँजीवादी समाज के सारे अलगावों से ग्रस्त महानगरी में ला पटके गए।

श्रीकांत वर्मा अपने युग और समाज को किस प्रकार देख रहे थे। वे लिखते हैं, ''1960 के आसपास मेरे चारों ओर मृत्यु की, सिर्फ़ ग़रीबी, भुखमरी और असहायता से उत्पन्न मृत्यु नहीं बल्कि ऐसी मृत्यु जिसे सैकड़ों नामों से पुकारा जा सकता है, जैसे कि आत्मनिर्वासन, सामाजिक पलायन, प्रेम–विफलता, मूल्यहीन संसार में जीने का अहसास, मानवीय क्रूरता, करुणाविहीनता चारों ओर ''मारो'' या ''मार दिया गया'' का शोर। '' अपनी वर्गीय सीमाओं से बाहर निकलकर अधिक विकसित सामाजिक समुदाय का हिस्सा होने की जद्दोजहद में एक संवेदनशील व्यक्ति को जो चोटें लगती हैं, उन सबका बयान इन पंक्तियों में पढ़ा जा सकता है। गरीबी, भुखमरी, असहायता के प्रमाण बड़ी संख्या में विपन्नता में मिल रहे लोगों की जिंदगियों में थे। श्रीकांत वर्मा इस अभाव को वाणी देना चाहते थे। पहले कविता–संग्रह ''भटका मेघ'' की भूमिका में उन्होंने उन साहित्यिक प्रवृत्तियों पर आक्रमण किया है जो आज के साहित्य को व्यक्तित्व की खोज के साहित्य के रूप में परिभाषित करना चाहती हैं। उनके अनुसार इस परिभाषा में अंतर्निहित है व्यक्तित्व को सामाजिकता से वंचित करने का प्रयास और उसे एक सामुदायिक जीवन–क्रम से, जिसे इतिहास भी कह सकते हैं, निकालकर अपने क्षणों तक सीमित करने का षड्यंत्रः तब नयी कविता श्क्षणों के महात्म्यश का साहित्य हो जाती है; तब मनुष्य एक जीवन नहीं जीता, क्षण जीता है। एक आदमी का जीवन–संघर्ष, उसके अंतर्द्वद्व और मनोपीड़ाएँ स्वयं में महाकाव्य की क्षमता रखती हैं; किंतु श्अन्वेषीश साहित्यकार की दृष्टि में इन असंख्य क्षणों में कोई परस्पर संबंध नहीं, उनका कोई मेरुदंड नहीं, वे सब असम्बद्ध तथा स्वयं में संपूर्ण और स्वतंत्र हैं। फलस्वरूप दायित्व भी क्षण के ही प्रति ! स्वतंत्रता भी क्षण की, दायित्व भी क्षण का।

3. रचनात्मक संघर्ष का आरंभ

श्रीकांत वर्मा की काव्य–रचना के आरंभ काल की पृष्ठभूमि में श्तार सप्तकश का आतंक तो था ही, व्यक्ति और समाज के संबंध को लेकर चलने वाली गर्मागर्म बहस थी, राजनीति के बदलते स्वरूप को लेकर चलने वाला विवाद था। लेकिन यह स्वाधीन भारत का उषा काल था– वातावरण में नएपन की, आरंभ करने की, कुछ खोजने और बनाने की ललक भरी खुशबू थी। स्वतंत्रता की यह भावना संक्रामक थी, वर्ग–संघर्ष में विश्वास करने वाले और आज़ादी को सिद्धांततः झूठी मानने वालों पर भी वह असर डाल रही थी, औरों का तो कहना ही क्या! श्रीकांत वर्मा के समकालीन केदारनाथ सिंह की भी उस दौर की कविताओं में उत्साह, उल्लास, उमंग के दर्शन होते हैं। संशय का स्वर भी है, लेकिन वह उतना प्रबल नहीं है। खोज की आकुलता, कुछ नया कर डालने की व्यग्रता, चारों तरफ चल रहे उत्सव में अपना स्वर मिलाने की बेकली ये सब श्रीकांत वर्मा की आरंभ की कविताओं में है। आस्था–विश्वास का स्वर अत्यंत ही दृढ़ हैं और दृ ष्टि साफ मालूम पड़ती है ।

हम समय की नब्ज़ हैं, जन को नब्ज़ से पहचानते हैं।
हम मनुज को कवि, समय को एक कविता मानते हैं।

''कविता की खोज'' शीर्षक इस कविता में वे कहते हैं श्दृ ष्टि में मेरी, दिशा, नवकमल जैसी खिल गई है।'

ऐसा नहीं कि इस रूमानियत के चलते वे यथार्थ को

जैसा वह था, देख नहीं पा रहे थे। 'संघर्ष–काल' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं:

हर एक दिशा में मुझे दरारें दिखती हैं,
शायद यह आँखों का भ्रम है।
ये फटे–फटे सपने, ये पंखनुची चिड़ियाँ,
यह सब कुछ कितना निर्मम है।
आत्मा के अंदर हिप्पोपोटेमस–सा दर्द चिंघाड़ रहा है।.....
कोमलताओं की जांघों पर है।
छींटे ताज़े लहू के।

यंत्रणा की इस तीव्र अनुभूति के बावजूद आस्था का स्वर टूटा नहीं है:

मेरी सिसकी मरसिया नहीं है जीवन का।
मेरी गहरी चेतना प्रशांत पानियों की
दुख के अणु विस्फोटों से
कभी–कभी ऐसे कंप जाती है।
लेकिन मेरे साहस के नागासाकी ने
अंतिम सांसों तक आत्मसमर्पण नहीं किया है।

'साहस का नागासाकी' में नागासाकी से अपने आपको जोड़ना मानीखेज है क्योंकि में रह रहे कवि की संवेदना के विस्तार का पता चलता है। जीवन जैसे श्रीव कविताओं में छलक पड़ता है।

4. काव्य में व्यक्त राजनीतिक दृष्टि:

श्रीकांत वर्मा लिखते रहते थे कि वे स्वयं को वामपंथी मानते थे, कविता में राजनीतिक तत्व को अनिवार्य समझते थे और एक प्रकार की 'प्रगतिशील' कविता का अस्तित्व भी मानते थे। आगे चलकर उन्होंने अपनी मान्यताओं में परिवर्तन किया। 'जन–साहित्य' जैसी किसी अवधारणा को अस्वीकार करते हुए उन्होंने लिखा कि कोई भी साहित्य या तो साहित्य होता है या साहित्य नहीं होता। जो लेखक अपने अनुभव से बाहर प्रामाणिकता को खोजने के लिए भटकते फिरते हैं, वे साहित्य के नाम पर समाजशास्त्र, राजनीति, दर्शन और चिकित्सा की पुस्तकें लिखते हैं। अशोक वाजपेयी ने 'आलोचना' में 'विचारों से विदाई' नामक अपने प्रसिद्ध लेख में इस बात पर क्षोभ व्यक्त किया था कि युवा लेखन का बड़ा हिस्सा विचारहीनता का शिकार है। श्रीकांत वर्मा ने इस आग्रह को खतरनाक मानते हुए लिखा 'विचार एक खतरनाक शब्द है। अक्सर जब राजनेता, कमिस्सार या आलोचक कविता के जरिए 'विचार' की माँग करते हैं तब उनका अभिप्राय 'प्रचार'होता है। इसलिए उनके अनुसार 'बीसवीं सदी ने उन्नीसवीं सदी को विदाई देते हुए हमेशा के लिए कविता से विचारों को आग्रह, मांग और चिंतन, तीनों ही अर्थों में–विदाई दी। यदि आज कोई कविता से विचारों की विदाई पर दुख व्यक्त करता है तो वह एक ऐसी व्यवस्था की पुकार करता है जिसमें कि कविता में मनुष्य की उपस्थिति ही काफी नहीं होती, मनुष्य पर फैसला देने वाली या अव्यक्त सत्ता की आतंक भरी मौजूदगी भी ज़रूरी होती है।' श्रीकांत वर्मा ने इस बात पर बल दिया कि कवि का एक अपना संसार होता है, अपनी–अपनी शर्तें होती हैं, वह किसी अन्य सत्ता की पुष्टि या सेवा के लिए काम नहीं करता।

उत्तरोत्तर श्रीकांत वर्मा की कविताओं में क्षोभ का स्वर बढ़ता गया और एक सुंदर, काव्यात्मक संसार के चित्र विरल होते गए। उन्हें चारों तरफ बढ़ते, फैलते नकलीपन से भी चिढ़ होने लगी।

'नकली कवियों की वसुंधरा' में उन्होंने लिखा:–
धन्य यह वसुंधरा !
मुख में इतनी सारी नदियों का झाग
केशों में अंधकार–
एक अंतहीन प्रसव–पीड़ा में पड़ी हुई
पल–पल मनुष्य उगल रही है, मवाद की तरह
नित–प्रति नगर फेंक रही है
बिलों से मनुष्य निकल रहे हैं, दरब से मनुष्य निकल रहे हैं
टोकरी के नीचे छिपे मुर्गों के मसीहा–कवि
बांग दे रहे हैं– सुबह हुई।
बरस रहा है अंधकार .... मगर उल्लू के पट्टे स्त्रियाँ
रिझाऊ कविताएँ लिख रहे हैं।

5. कविताओं में इतिहास और वर्तमान का द्वंद्व:

'इतिहास–बोध' पात्र चिंतकों या दार्शनिकों के लिए नहीं, कवि के लिए कितना आवश्यक है और किस प्रकार वह उसकी रचनात्मकता को दिशा देता है, इसका उदाहरण है एक लंबी खामोशी के बाद श्मगधश का प्रकाशन। इस अंतराल को प्रायः उनकी सृजनात्मकता का सबसे 'अनुर्वर काल' माना गया है। लेकिन 'मगध' की कविताओं को पढ़ने के बाद ऐसा कहना अधिक उचित मालूम होता है कि यह वास्तविक 'सर्जनात्मक अंतराल' था। 'मगध' की कविताओं में इतिहास की स्मृतियाँ, ऐतिहासिक स्थल, ऐतिहासिक व्यक्तित्व जीवंत चरित्रों की भूमिका में हैं। कवि की चेष्टा उनका नया मिथक खड़ा करने की नहीं है। उसने एक अत्यंत ही जटिल रचनात्मक विधि से उन समस्त ऐतिहासिक प्रसंगों को समकालीन बनाने की चेष्टा की है। लेकिन ऐसा करते हुए वह श्प्रासंगिकताश के प्रलोभन से खुद को बचा ले जाते हैं। 'मगध' के प्रकाशन ने हिंदी साहित्य समाज को स्तंभित कर दिया। डॉ. केदारनाथ सिंह ने भी एक जगह बातचीत में स्वीकार किया कि जब श्रकांत वर्मा ने पहले–पहल इन कविताओं का पाठ अपने मित्रों के सामने किया तो वे प्रलाप–जैसी लगीं। उनमें कोई अर्थ खोज पाना कठिन था और वे असम्बद्ध भी प्रतीत होती थीं। धीरे–धीरे उनका असर होना शुरू हुआ और अब तो यह कहना होगा कि भले ही सबकी समझ में अभी भी न आई हों, प्रभावित उन्होंने सबको किया है। श्मगधश में एक जादुई वातावरण की सृष्टि की गई है, जिसमें सारे ऐतिहासिक पात्र सक्रिय हैं– लेकिन ऐसा लगता है मानो अतीत और वर्तमान

आमने–सामने खड़े हैं। समकालीन संवेदना का इस स्मृति–लोक में खेल–सा चलता रहता है, किंतु इस खेल के गंभीर राजनीतिक–सामाजिक और दार्शनिक आशय हैं। उदाहरण के लिए, 'तीसरा रास्ता' शीर्षक प्रसिद्ध कविता तो इतनी बार इतने लोगों द्वारा उद्धत की जा चुकी है कि वह आज के समय के एक रूपक में बदल गई कही जानी चाहिएः

मगध में शोर है कि मगध में शासक नहीं रहे,जो थे
वे मदिरा, प्रसाद और आलस्य के कारण
इस लायक/नहीं रहे कि उन्हें हम
मगध का शासक कह सकें।

इन पंक्तियों को बीसवीं सदी के अंतिम वर्षों में पढ़ने वाला पाठक अपने समय पर टिप्पणी के तौर पर पढ़ता है।

6. उपसंहार

श्रीकांत वर्मा जैसे कवियों के साथ दुर्घटना यह होती है कि उनके जीवन का शोरगुल उनकी कविता पर कुछ इस कद्र छा जाता है कि वे ठीक से सुनाई भी नहीं देतीं। उनके राजनीतिक जीवन ने उनकी कविताओं के अर्थ को समझने में प्रायः बाधा पहुँचाई। प्रायः हिंदी के आलोचकों ने उनके जीवन काल में, और उनमें प्रगतिवादी प्रमुख हैं, उनके साथ कठोरता से व्यवहार किया। 'मगध' के प्रकाशन से उलझन और बढ़ गई। लेकिन जैसे–जैसे उनका जीवन पृष्ठभूमि में गया, उनकी कविताएँ उभरकर सामने आने लगीं बड़े ही ट्रैजिक ढंग से उनकी असमय मृत्यु ने उनकी कविताओं में छिपे दर्द को उभार दिया। उनका यह कहना गलत न था कि वे जीवन–भर स्वयं अपनी ज़िंदगी से लड़ते रहे। श्रीकांत वर्मा की कविताओं में उनके जीवन की और उनके समय के समाज के जीवन की रक्ताक्त गाथा है गहरे नैतिक आशयों से युक्त– वह एक लघु महाभारत है जो अन्याय, छद्म, धोखाधड़ी, असत्य, षड्यंत्र, खून से भरा हुआ है लेकिन जिसकी केंद्रीय चिंता मनुष्य है कितना ही दूषित, लांछित, अपमानित, क्षत–विक्षत क्यों न हो– मनुष्य एक ऐसी सृष्टि है जिसकी कहानी हमेशा नई है और गाए जाने योग्य है!

संदर्भ ग्रन्थो सूची

1. सुरेश शर्मा, 1981, रघुवीर सहाय का कवि कर्म, पीपुल्स पब्लिकेशंस, दिल्ली।
2. अनन्तकीर्ति तिवारी, 1996, रघुवीर सहाय की काव्यनुभूति, वि.वि. प्रकाशन, वाराणसी।
3. सं० विष्णु नागर, असद जैदीरू 1993, रघुवीर सहाय, आधार प्रकाशन, पंचकुला।
4. सं० विनोद भारद्वाज 1979, श्रीकांत वर्मा, राजपाल एंड संस, दिल्ली।
5. सुमन वर्मा, 1996, श्रीकांत वर्मा की कविता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।